गोरा

अध्याय 11

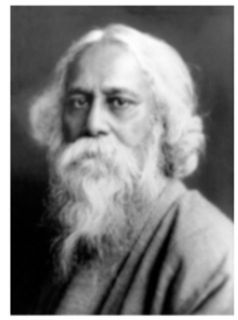

रविंद्रनाथ टैगोर

गोरा

अध्याय 11

https://www.hindiadda.com/gora-part-xi/

ललिता को साथ लेकर विनय परेशबाबू के घर पहुँचा।

विनय के मन का भाव ललिता के बारे में क्या है, यह स्टीमर पर सवार होने तक ठीक-ठीक नहीं जानता था। ललिता के साथ झगड़ा ही मानो उसके मन पर सवार रहता था। कैसे इस मनचली लड़की के साथ सुलह की जा सकती है, कुछ दिनों से तो यही मानो उसकी दैनिक चिंता हो गई थी। सुचरिता ही पहले-पहल विनय के जीवन में सांध्य-तारक की तरह स्त्री-माधुर्य की निर्मल दीप्ति लेकर प्रकट हुई थी। विनय यही समझता था इसी भाव के अलौकिक आनंद ने उसकी प्रकृति को परिपूर्णता दी है। लेकिन इस बीच और भी तारे निकल आए हैं, और ज्योति-उत्सव की भूमिका पूरी करके पहला तारा धीरे-धीरे क्षितिज के पार चला गया है, यह बात वह स्पष्ट नहीं पहचान सका था।

विद्रोही ललिता जिस दिन स्टीमर पर सवार हुई, उस दिन विनय के मन में आया- ललिता और मैं एक ओर होकर मानो सारे संसार के प्रतिकूल खड़े हुए हैं।-इस घटना के द्वारा और सबको छोड़कर ललिता उसी के पार्श्व में आ खड़ी हुई है, यह बात विनय किसी तरह नहीं भुला सका। चाहे जिस कारण हो, चाहे जिस उपलक्ष्य से हो, ललिता के लिए विनय आज केवल बहुत-से लागों में मात्र एक नहीं रहा है- ललिता के पार्श्व में अकेला वही है,एकमात्र वही है- सारे आत्मीय स्वजन दूर हैं, वही निकट है। इसी निकटता का पुलक-भरा स्पंदन बिजली चमकाते मेघ की भाँति उसके हृदय में गड़गड़ाने लगा। जब ललिता पहले दर्जे के केबिन में सोने चली गई तब विनय अपनी जगह पर सोने के लिए नहीं जा सका। उसी केबिन के बाहर डेक पर जूते उतारकर वह नि:शब्द पैरों से टहलता रहा। स्टीमर में ललिता पर कोई मुसीबत आने की ज़रा सम्भावना नहीं थी, किंतु विनय अचानक मिले अपने नए अधिकार का भरपूर अनुभव करने के लोभ से अनावश्यक मेहनत किए बिना न रह सका।

गहरी अंधेरी रात, तारों से सजा हुआ मेघ- शून्य आकाश। किनारे की तरु श्रेणी मानो रात के आकाश की सघन काली सुनसान दीवार की तरह निश्चल खड़ी थी। नीचे चौड़ी नदी की प्रबल धारा नि:शब्द बह रही थी। उसी के बीच में ललिता सो रही है। और कुछ नहीं, यही सुखद विश्वास-भरी नींद ही ललिता ने आज विनय के हाथों में सौंप दी है। विनय ने किसी मूल्यवान रत्न की तरह इस नींद की ही रक्षा करने का जिम्मा लिया है। माता-पिता, भाई-बहन कोई वहाँ नहीं हैं, एक अपरिचित शय्या पर ललिता अपनी सुंदर देह को लिटाकर निश्चित सो रही है। निश्वास-प्रश्वास मानो उसी निद्रा-काव्य को छंदबध्द करते हुए शांत भाव से आ-जा रहे है। उस निपुण कबरी

की एक लट भी इधर-उधर नहीं हुई है, उस नारी-मन की मंगल-कोमलता से मंडित दोनों हाथ संपूर्ण विश्राम में बिस्तर पर रखे हैं, दोनों कुसुम सुकुमार तलवे मानो किसी उत्सव के अवसान-संगीत की तरह अपनी सब रमणीय गति-चेष्टाओं को स्तब्ध करे बिस्तर पर सटे हुए रखे है। संपूर्ण विश्राम की इस छवि ने विनय की कल्पना को आच्छादित कर लिया। तारों-भरे नि:शब्द अंधेरे से घिरे हुए इस आकाश-मंडल के बीचों-बीच ललिता की यह नींद, यह सुडौल, सुंदर, संपूर्ण विश्राम, जैसे सीप में मोती सो रहा हो, आज यह विनय को जैसे संसार का एक मात्र ऐश्वर्य जान पड़ रहा था। 'मैं जाग रहा हूँ, मैं जाग रहा हूँ'- विनय के भरे हुए हृदय से यह वाक्य अभय की शंख-ध्वनि की भाँति उठकर अनंत आकाश में अनिमेष जागृति परम पुरुष की नीरव वाणी के साथ घुलने लगा।

कृष्ण पक्ष की इस रात्रि में एक और बात भी बार-बार विनय को कचोट रही थी कि आज की रात गोरा जेल में है। आज तक विनय गोरा के सभी सुख-दु:ख में हिस्सा लेता आया है, यही पहला अवसर है कि ऐसा नहीं हुआ है। जेल की सज़ा गोरा जैसे व्यक्ति के लिए कुछ नहीं है, यह विनय जानता था। लेकिन इस मामले में शुरू से अंत तक कहीं भी विनय का गोरा के साथ योग नहीं रहा। गोरा के जीवन की यही एक घटना ऐसी थी जिससे विनय का कोई संपर्क नहीं रहा। दोनों बंधुओं के जीवन की धारा इसी जगह आकर अलग हो गई है- जब फिर मिलेगी तब क्या इस विच्छेद की रिक्ति को भर सकेगी? बंधुत्व की पूर्णता क्या यहां आकर खंडित नहीं हो गई? जीवन का ऐसा अखंड, ऐसा दुर्लभ बंधुत्व! विनय आज की रात एक साथ ही अपने जीवन के एक पक्ष की शून्यता और दूसरे पक्ष की पूर्णता का अनुभव करता हुआ जैसे प्रलय-सृजन के संधि-काल में स्तब्ध होकर अंधकार की ओर ताकता रहा।

यह बात अगर सच होती कि गोरा की यात्रा में विनय संयोगवश ही साथ नहीं दे सका अथवा उसके जेल जाने पर पर दैवयोग के कारण ही विनय का उस दु:ख में समभागी होना असंभव हुआ है, तब इनसे उनकी मित्रता को क्षति न पहुँचती। किंतु गोरा जिस यात्रा पर निकला और विनय अभिय करने गया, यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। विनय के सारे जीवन की धारा एक ऐसे रास्ते पर आ पड़ी है जो उनकी पहली दोस्ती का रास्ता नहीं है, इसी कारण इतने दिन बाद यह बाह्य-विच्छेद भी संभव हो सका। किंतु अब दूसरा कोई उपाय नहीं है- सत्य को और अस्वीकार नहीं किया जा सकता। गोरा के साथ एक ही अविच्छिन्न रास्ते पर एक मन होकर चलना आज विनय के लिए सत्य नहीं रहा। किंतु गोरा और विनय के चिर जीवन का स्नेह क्या इस पथ-भेद से ही नष्ट हो जाएगा, विनय के हृदय को इस शंका ने कँपा दिया। वह

समझता था कि उसकी सारी दोस्ती और सारे कर्तव्य को गोरा एक ही लक्ष्य की ओर खींचे बिना न रह सकेगा। प्रचंड गोरा! उसकी इच्छा कितनी प्रबल होती है! जीवन के सब संबंधों द्वारा अपनी उस एक इच्छा को ही सर्वोपरि रखकर वह यात्रा-पथ पर बढ़ता जाएगा- गोरा की प्रकृति को विधाता ने ऐसी ही राजमहिमा प्रदान की है।

घोड़ागाड़ी परेशबाबू के घर के दरवाजे पर आकर रुकी। उतरते समय ललिता के पैर काँप रहे थे, और घर में प्रवेश करते समय उसने यत्पपूर्वक अपने को कड़ा कर लिया है, यह विनय स्पष्ट देख सका। झोंक में आकर ललिता ने जो काम कर दिया है उसमें उसका अपराध कितना है इसका ठीक-ठीक अनुमान वह स्वयं नहीं कर पा रही थी। इतना ललिता जानती थी कि परेशबाबू उससे ऐसी कोई बात नहीं कहेंगे जिसे स्पष्टत: फटकार कहा जा सके, किंतु परेशबाबू के इस तरह चुप रह जाने का ही उसे सबसे अधिक डर था।

ललिता ने इस संकोच को लक्ष्य करके विनय यह निश्चित नहीं कर सका कि ऐसे मोके पर उसका कर्तव्य क्या है। उसके साथ रहने पर ललिता का संकोच और अधिक होगा या नहीं इसी की पड़ताल के लिए उसने कुछ दुविधा के स्वर में ललिता से कहा, "तो मैं अब चलूँ?"

विनय को मन-ही-मन ललिता का यह व्यग्र अनुरोध बहुत अच्छा लगा। ललिता को घर पहुँचा देते ही उसका कर्तव्य पूरा नहीं हो गया है, इस एक आकस्मिक घटना से उसकी जीवन का ललिता के साथ एक विशेष गठबंधन हो गया है- यही ध्यान करके विनय मानो एक विशेष दृढ़ता के साथ ललिता के पार्श्व में खड़ा हुआ। उसके प्रति ललिता की इस निर्भरता की कल्पना एक स्पर्श-सी उसके शरीर में रोमांच का संचार करने लगी। उसे लगा, ललिता ने जैसे उसका दाहिना हाथ कसकर पकड़ रखा हो। ललिता के साथ इस संबंध की पुलक से उसका पौरुष जाग उठा। मन-ही-मन उसने सोचा, ललिता की इस असामाजिक हठधर्मिता के कारण परेशबाबू बिगड़ेंगे, ललिता को डाँटेंगे, उस समय विनय यथा सामर्थ्य सारा दायित्व अपने ऊपर ले लेगा- सारी भर्त्सना नि:संकोच अपने ऊपर लेकर कवच की भाँति ललिता की रक्षा करने को तैयार रहेगा।

हालाँकि ललिता के मन का सही भाव विनय नहीं समझ सका। यह बात नहीं थी कि भर्त्सना की आड़ मानकर ही ललिता उसे छोड़ना नहीं चाहती थी। असल बात यह थी कि ललिता कुछ भी छिपाकर नहीं रख सकती। उसने जो अकृत्य किया है वह समूचा

ही परेशबाबू आँखों से देख लें,और उनका जो फैसला हो ललिता उसे पूरी श्रध्दा से ग्रहण करेगी, यही वह सोच रही थी।

ललिता मन-ही-मन सबेरे से ही विनय पर नाराज़ हो रही थी, उसका क्रोध असंगत है यह भी वह खूब जानती थी, लेकिन इससे वह कम नहीं हो रहा था, बल्कि और बढ़ रहा था।

वह जब तक स्टीमर पर थी तब तक उसके मन की स्थिति बिल्कुल दूसरी थी। वह बचपन से ही कभी गुस्से में आकर तो कभी हठ करके कोई-न-कोई अजीब हरकत करती आई है, किंतु इस बार का मामला काफी गंभीर था। इस निषिध्द कार्य में उसके साथ विनय भी मिल गया है,इससे एक ओर जहाँ उस संकोच हो रहा था वहीं दूसरी ओर एक आंतरिक हर्ष भी हो रहा था। यह हर्ष मानो उस निषेध की भावना की चोट से और भी उमड़ उठा था। एक बाहर के व्यक्ति का आज उसने ऐसे आश्रय लिया है, उसके इतना निकट आ गई है कि उन दोनों के बीच घर के लोगों की कोई उपस्थिति नहीं रही है, इसमें घबराहट का भी काफी कारण था- लेकिन विनय की स्वाभाविक भद्रगता ने एक ऐसी संयत मर्यादा पैदा कर दी थी कि इस आशंका भरी अवस्था में भी ललिता विनय के सुकुमार शील का परिचय पाकर बहुत आनंदित हो रही थी। यह वह विनय नहीं था जो उनके घर पर बिना संकोच सबके साथ हँसी-मज़ाक करता रहता था, जिसकी बातों का अंत नहीं था, जो घर के नौकरों तक से निर्बाध आत्मीयता बना लेता था। जहाँ सतर्कता के नाम पर बड़ी आसानी से वह ललिता के और भी निकट आ सकता था, वहाँ वह एक दूरी का निर्वाह करता रहा था, यह अहसास उसे ललिता के हृदय के और भी निकट ले आया था। स्टीमर के केबिन में रात को अनेक चिंताओं के कारण अच्छी तरह वह सो नहीं सकी थी। करवटें लेते-लेते अंत में जब उसे लगा कि रात अब तक बीत गई होगी, तब धीरे-धीरे उसने केबिन का दरवाज़ा खोलकर बाहर झाँका। भोर का ओस-भीगा अंधकार तब तक भी नदी के आकाश और किनारे की वन-श्रेणी को ढके हुए था। अभी-अभी एक शीतल झोंका नदी के जल में लहरों का कल-कल स्वर उठाने लगा था और निचले तल्ले में एंजिन-रूम के खलासियों के काम शुरू करने की हलचल के लक्षण दीख रहे थे। केबिन से बाहर आकर ललिता ने देखा, पास ही एक बेंत की कुर्सी पर गर्म चादर ओढे बैठा-बैठा विनय सोया हुआ है। देखकर ललिता के हृदय की धड़कन तेज़ हो गई। सारी रात वहीं बैठकर विनय पहरा देता रहा है! इतना पास, फिर भी इतनी दूर! ललिता काँपते पैरों से डेक से केबिन की ओर लौट गई, दरवाजे क़े पास खड़ी होकर उस हेमंती प्रत्यूष के अंधेरे में लिपटे अनजाने नदी-दृश्य के बीच अकेले सोए हुए

विनय की ओर ताकती रही। सामने की ओर आकाश के ारे विनय की नींद की रखवाली करते हुए-से जान पड़े, एक अनिर्वचनीय गंभीर माधुर्य से उसका हृदय मानो लबालब भर गया। एकाएक उसकी ऑंखों में ऑंसू क्यों उमड़ आए, यह ललिता स्वयं भी न समझ सकी। जिस ईश्वर की उपासना करना उसने पिता से सीखा है, उसी ने जैसे ललिता को अपने दाहिने हाथ से छू दिया हो। मानो नदी के तरु-पल्लवों से छाए हुए निद्रित किनारे पर जब रात के अंधकार के साथ नए आलोक का प्रथम रहस्यमय मिलन हो रहा हो, उसी पवित्र मिलन-क्षण में नक्षत्रों से भरी सभा में कोई महावीणा दु:सह आनंद-पीड़ा के दिव्य स्वर में बज उठी हो।

नींद में ही अचानक विनय का हाथ कुछ हिला। ललिता जल्दी से केबिन का दरवाज़ा बंद करके बिस्तर पर लेट गई। उसके हाथ-पैर मानो ठंडे पड़ गए, काफी देर तक अपने हृदय की धड़कन को वह वश में न कर सकी।

अंधेरा दूर हो गया। स्टीमर चल पड़ा था। ललिता हाथ-मुँह धोकर तैयार होकर बाहर आई और रेलिंग पकड़कर खड़ी हो गई। विनय भी पहले से ही जहाज़ की सीटी से जागकर तैयार होकर पूर्वी छोर पर प्रभात की पहली किरण के चमकने की प्रतीक्षा में खड़ा था। ललिता के बाहर आते ही संकुचित होकर वह हट जाने का उपक्रम कर ही रहा था कि ललिता ने पुकारा, "विनय बाबू!"

विनय के पास आते ही ललिता ने कहा**, "**शायद आप रात को अच्छी तरह सो नहीं सके।**"**

विनय ने कहा**, "**मजे**,** से सोया।**"**

दोनों में फिर कोई बात नहीं हुई। ओस से भीगे हुए कास-वन के पीछे से अरुण सूर्योदय की सुनहरी छटा फैलने लगी। इन दोनों ने जीवन में ऐसा प्रभात कभी नहीं देखा था। उन्हें आलोक ने ऐसे कभी नहीं छुआ था। आकाश निपट शून्य नहीं है, वह मौन विस्मय-भरे आंनद से सृष्टि की ओर अनिमेष देख रहा है, यह उन्होंने तभी पहले-पहल जाना। आज मानो दोनों की आंतरिक चेतना ऐसी जाग गई थी कि सारे जगत के अंतर्निहित चैतन्य से उनका अंग-अंग छू रहा था। दोनों में से कोई कुछ भी बोल न सका।

जब स्टीमर कलकत्ता पहुँचा तो विनय ने घाट पर गाड़ी तय की और ललिता को भीतर बैठाकर खुद कोचवान के पास बैठा। यहीं दिन के समय कलकत्ता की सड़क पर गाड़ी में जाते-जाते ललिता के मन में क्यों उलटी हवा बहने लगी, यह कौन बता

सकता है। इस संकट के समय स्टीमर पर विनय का होना, विनय के साथ ललिता का इस प्रकार जुड़ जाना विनय का अभिभावक की तरह उसे गाड़ी में बिठाकर घर पहुँचाना, ये सब बातें उसे पीड़ा पहुँचाने लगीं। घटनावश उसके बारे में विनय को एक ज़िम्मेदारी का अधिकार मिल जाय, यह उसे असह्य जान पड़ रहा था। ऐसा क्यों हुआ?रात का वह संगीत दिन में कर्म-क्षेत्र के समक्ष आने पर ऐसे कठोर स्वर के साथ क्यों रुक गया?

दरवाजे पर आकर जब विनय ने संकोच करते हुए पूछा, 'तो मैं चलूँ', तो ललिता का क्रोध और भी भड़क उठा- उसने सोचा विनय बाबू समझ रहे हैं कि उन्हें साथ लेकर पिता के सामने जाती हुई मैं घबरा रही हूँ। इस मामले में उसके मन में ज़रा भी दुविधा नहीं है, इसी बात को बलपूर्वक प्रमाणित करने के लिए और सारी बात पिता के सामने पूर्णत: उपस्थिति करने के लिए उसने विनय को अपराधी की तरह दरवाज़ से ही विदा लेकर लौट जाने नहीं दिया।

वह विनय के साथ अपने संबंध को पहले-जैसा साफ कर देने नहीं दिया है- बीच में कोई संकोच या कुंठा शेष रहने देकर अपने को वह विनय के सामने छोटा नहीं करना चाहती।

31.सतीश कहीं से विनय और ललिता को देखते ही दौड़ा हुआ आया। दोनों के बीच खड़े होकर दोनों के हाथ पकड़ता हुआ बोला, "क्यों, बड़ी दीदी नहीं आईं?"

जेब टटोलते और चारों ओर देखते हुए विनय ने कहा, "बड़ी दीदी! ओह हाँ सचमुच- वह तो खो गईं।"

विनय को धक्का देते हुए सतीश ने कहा, "ऊँह, बड़े आए! बताओ न ललिता दीदी।"

ललिता बोली, "दीदी कल आएँगी।" कहती-कहती वह परेशबाबू के कमरे की ओर बढ़ी।

ललिता और विनय के हाथ पकड़कर खींचता हुआ सतीश बोला, "चलो, देखो हमारे घर कौन आए है।"

हाथ छुड़ाते हुए ललिता ने कहा, "जो भी आए हों तेरे, अभी तंग मत कर। अभी मैं बाबा के पास जाऊँगी।"

सतीश ने कहा, "बाबा बाहर गए हैं, उन्हें आने में देर होगी।"

यह सुनकर विनय और ललिता दोनों को क्षण-भर को तसल्ली हुई। फिर ललिता ने पूछा, "कौन आया है?"

सतीश ने कहा, "नहीं बताता। अच्छा विनय बाबू, आप बताइए तो कौन आया है? आप कभी नहीं बता सकेंगे- कभी नहीं- कभी भी नहीं!"

विनय बिल्कुल असंभव और असंगत नाम लेने लगा- कभी नवाब सिराजुद्दौला, कभी राजा नवकृष्ण, यहाँ तक कि एक बार उसने नंदकुमार का भी नाम ले दिया। ऐसे अतिथियों का आना एक बारगी असंभव है, इसका अकाट्य प्रमाण देते हुए सतीश चिल्ला-चिल्लाकर उनका खंडन करने लगा। विनय ने हार मानते हुए नम्र स्वर में कहा, "हाँ यह तो है, सिराजुद्दौला को इस घर में आने में कई- एक बड़ी मुश्किलें पेश आएँग। यह बात तो मैंने अभी तक सोची ही नहीं थी। खैर, पहले तुम्हारी दीदी पड़ताल कर आएँ, फिर अगर ज़रूरत होगी तो बुलाते ही मैं भी आऊँगा।"

सतीश ने कहा- "नहीं, आप दोनों चलिए!"

ललिता ने पूछा, "कौन से कमरे में जाना होगा?"

सतीश ने कहा, "तिमंज़िले में।"

तीसरी मंज़िल में छत के एक कोने पर एक छोटा कमरा है जिसके दक्षिण की ओर धूप-वर्षा से बचने के लिए एक ढलवाँ छत की बरसाती है। सतीश के पीछे-पीछे दोनों ने वहाँ जाकर देखा, बरसाती में एक छोटा आसन बिछाकर अधेड़ उम्र की एक स्त्री आँखों पर चश्मा लगाए कृत्तिवास की'रामायण' पढ़ रही हैं। चश्मे की एक ओर की टूटी कमानी में डोरा बँधा हुआ था, जो कान पर लपेटा हुआ था। स्त्री की उम्र पैंतालीस के आस-पास होगी, सिर पर सामने की ओर बाल कुछ विरल हो चले थे, किंतु पके फल जैसे गोरे चेहरे पर अभी झुर्रियाँ नहीं थी। दोनों भौंहों के बीच गोदने का निशान था। शरीर पर कोई अलंकार नहीं था, वेश विधवा का था। पहले ललिता की ओर नज़र पड़ते ही उन्होंने चश्मा उतारकर किताब रख दी, ओर उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखा, फिर फौरन ही उसके पीछे विनय को देखकर सिर पर आँचल ओढ़ते हुए खड़ी होकर कमरे की ओर जाने लगीं। सतीश ने जल्दी से बढ़कर उनसे लिपटते हुए कहा "मौसी, कहाँ भाग रही हो, यह हमारी ललिता दीदी है, और यह विनय बाबू। बड़ी दीदी कल आएँगी।"

विनय बाबू का यह अत्यंत संक्षिप्त परिचय ही बहुत हुआ, नि:संदेह विनय बाबू के बारे में पहले ही काफी बातचीत होती रही थी। दुनिया में सतीश ने जो दो-चार विषय चर्चा के लिए जुटाए हैं, ज़रा भी मौका मिलते ही सतीश उन्हीं की बात करने लगता है और कुछ भी बचाकर नहीं रखता।

मौसी कहने से कौन समझा जाय, यह ठीक निश्चय न कर पाने से ललिता चुप होकर खड़ी रही। विनय के उस प्रौढ़ा को प्रणाम करके उनकी चरणधूलि लेते ही ललिता ने भी उसका अनुकरण किया।

मौसी जल्दी से एक चटाई निकाल लाईं और बिछाते हुए बोलीं, "बैठो बेटा, बैठो बेटी।"

विनय और ललिता के बैठ जाने पर वह भी अपने आसन पर बैठ गईं और सतीश उनसे सटकर बैठा। उन्होंने सतीश को दाहिने हाथ से घेरकर जकड़ते हुए कहा, "तुम लोग मुझे नहीं जानते, मैं सतीश की मौसी हूँ। सतीश की माँ मेरी सगी बहन थीं।"

परिचय में बस इतने से अधिक कुछ नहीं कहा गया था, लेकिन मौसी के चेहरे और स्वर में ऐसा न जाने क्या था जिससे उनके जीवन की एक गंभीर दु:ख और ऑंसुओं से मँजी पवित्रता का आभास मिल गया। मैं सतीश की मौसी हूँ' कहते हुए उन्होंने जब सतीश को गले से लगा लिया तब विनय का मन उनके जीवन का इतिहास कुछ न जानते हुए भी करुणा से भर उठा। विनय कह उठा, "अकेले सतीश की मौसी होने से नहीं चलेगा। नहीं तो इतने दिन बाद सतीश से मेरी लड़ाई हो जाएगी। एक तो सतीश मुझे विनय बाबू कहता है, दादा नहीं कहता, इस पर वह मुझे मौसी से भी अगर वंचित करेगा तो किसी तरह अच्छा न होगा।"

किसी का मन लुभाते विनय को देर नहीं लगती थी। इस प्रियदर्शी, प्रियभाषी युवक ने मौसी के मन पर देखते-देखते सतीश के बराबर अधिकार कर लिया।

मौसी ने पूछा, "बेटा, तुम्हारी माँ कहाँ हैं?"

विनय बोला, "बहुत दिन पहले अपनी माँ को तो खो दिया, लेकिन यह नहीं कह सकता कि मेरी माँ नहीं है।"

कहते-कहते आनंदमई की बात याद करके उसकी ऑंखें भावों के उद्रेक से गीली हो आईं। दोनों ओर से जमकर बातें होने लगी। ऐसा बिल्कुल नहीं लगता था कि आज

ही इन दोनों का नया-नया परिचय हुआ है। बीच-बीच में सतीश भी बिल्कुल अप्रासंगिक ढंग से अपना मंतव्य प्रकट करने लगा। ललिता चुपचाप बैठी रही।

कोशिश करके भी ललिता आसानी से किसी से हिल-मिल नहीं सकती, नए परिचय की खाई लाँघने में उसे काफी समय लगता है। इसके अलावा आज उसका चित्त भी ठीक नहीं था। अपरिचिता से विनय जो अनायास ही बातों का सिलसिला जोड़ बैठा, यह भी उसे अच्छा नहीं लग रहा था। ललिता जिस विपत में पड़ी हुई है, विनय उसकी गुरुता न समझकर ही ऐसा निश्चिंत हो रहा है, यह सोचकर मन-ही-मन वह विनय को ओछा कहकर कोसने लगी। किंतु गंभीर चेहरा बनाकर चुप-चाप उदास बैठे रहने से ही विनय को ललिता के असंतोष से छुटकारा मिल जाता, यह भी बात नहीं थी। वैसा होने पर ललिता निश्चय ही मन-ही-मन बिगड़कर कहती- बाबा से समझना तो मुझे है; लेकिन विनय बाबू ऐसी सूरत बनाए बैठे हैं,जैसे उन्हीं के सिर सारी ज़िम्मेदारी आ पड़ी हो। असल बात यह थी कि कल रात को जो आघात संगीन जगा गया था आज उससे दिन के समय केवल व्यथा जागती थी-कुछ भी अच्छा नहीं रहा था। इसीलिए आज ललिता पग-पग पर मन-ही-मन विनय से लड़ती जा रही है, वह झगड़ा विनय के किसी व्यवहार से सुलझता नहीं दीखता- कहाँ इसकी जड़ है जहाँ सुधार होने से वह दूर होगा, वह तो अंतर्यामी ही जानते हैं।

हाय रे, जिनका संसार हृदय तक ही सीमित है, उस नारी-जाति के व्यवहार को युक्ति-विरुध्द कहकर दोष देने से क्या फायदा! यदि आरंभ से ही ठीक स्थान पर उसकी प्रतिष्ठा हो जाय तब तो हृदय ऐसी सहज लयबध्द गति से चलता है कि युक्ति-तर्क को हार मानकर उसके सामने सिर झुकाना पड़ता है। किंतु आरंभ में लेश-मात्र भी विपर्यय हो जाने से बुध्दि के वश की यह बात नहीं रहती कि उसे सुधार दे। फिर राग-विराग, हँसी-रुदन,किसी भी बात में क्या होने से क्या असर होता है इसका हिसाब ही व्यर्थ हो जाता है।

आज कल विनय का हृदय-तो भी कुछ विशेष स्वाभाविक गति से नहीं चल रहा था। उसकी अवस्था यदि बिल्कुल पहले-जैसी होती तो वह इसी क्षण दौड़ा हुआ आनंदमई के पास जाता। गोरा की कैद की सज़ा की खबर विनय के सिवा माँ को और कौन दे सकता है? उसके सिवा माँ के पास ढांढ़स के लिए और है भी क्या? इसी की घुटन विनय के मन की गहराई में एक भार-सी उसे दबाए जा रही थी। लेकिन ललिता को अभी छोड़कर चले जाना भी उसके लिए असंभव हो गया था। आज सारे संसार के विरुध्द वही ललिता का रक्षक है। ललिता के संबंध में परेशबाबू के सम्मुख उसका

कुछ कर्तव्य हो तो उसे वह पूरा करके ही जाना होगा, यह बात वह अपने मन को समझा रहा था। और मन ने भी थोड़े से प्रयत्न से ही वह बात समझ ली थी, प्रतिवाद की सामर्थ्य ही उसमें नहीं थी। विनय के मन में गोरा और आनंदमई के लिए चाहे जितना दर्द हो, ललिता का अत्यंत निकट अस्तित्व उसे आज ऐसा आनंद दे रहा था, जैसे एक खुलेपन का, सारे संसार में एक गौरव का बोध करा रहा हो- अपनी एक विशिष्ट स्वतंत्र सत्ता का उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि उसके मन की व्यथा मन के निचले स्तर पर ही दबी रह गई। आज ललिता की ओर वह देख नहीं पा रहा था, बीच-बीच में अपने-आप ही जितना नज़र पड़ जाता- ललिता के आँचल का अंश, गोद में निश्चल पड़ा हुआ एक हाथ- उतना ही उसे पुलकित कर जाता था।

देर होती रही। परेशबाबू नहीं लौटे। यह सोचकर चलने के लिए भीतर से प्रेरणा क्रमश: प्रबल होने लगी। उसे किसी तरह दबाने के लिए विनय सतीश की मौसी के साथ और भी मन लगाकर बातें करने लगी। अंत में ललिता की विरक्ति और दबी न रह सकी, वह बीच ही में विनय की बात को टोकती हुई कह उठी, "आप और देर किसलिए कर रहे हैं? बाबा कब आएँगे इसका कुछ निश्चित नहीं है। क्या आप एक बार गौर बाबू की माँ के पास नहीं जाएँगे?"

विनय चौंक उठा। ललिता की विरक्ति का स्वर उसका खूब जाना-पहचाना था। वह ललिता के चेहरे की ओर देखकर फौरन उठ खड़ा हुआ। सहसा डोर टूट जाने से धनुष जैसे हो जाता है कुछ उसी ढंग से वह खड़ा हुआ। वह देर क्यों करने लगा? यहाँ कोई खास ज़रूरत थी, ऐसा अहंकार तो उसने स्वयं नहीं किया था, वह तो दरवाजे से ही विदा ले रहा था, ललिता ने ही तो उसे अनुरोध करके रोक लिया था- और अब ललिता ही यह पूछ रही है!

ऐसे हड़बड़ाकर आसन छोड़कर विनय उठ खड़ा हुआ था कि ललिता ने विस्मित होकर उसकी ओर देखा। उसने लक्ष्य किया कि विनय के चेहरे की स्वाभाविक मुस्कुराहट एकाएक ऐसी बुझ गई है मानो फूँक मारकर दिया बुझा दिया गया हो। विनय का ऐसा व्यथित चेहरा, उसके भाव का ऐसे अचानक परिवर्तन ललिता ने पहले कभी नहीं देखा था। उसके विनय की ओर देखते ही तीखा अहसास एक कोड़े की मार जैसा बार-बार उसके हृदय को सालने लगा।

सतीश ने जल्दी से उठकर विनय बाबू का हाथ पकड़कर झूलते हुए खुशामद के स्वर में कहा, "विनय बाबू, बैठिए, अभी मत जाइए! आज हमारे यहाँ खाना खाकर

जाइएगा। मौसी, विनय बाबू को यहीं खाने को कह दो न! ललिता दीदी, तुम विनय बाबू से जाने को क्यों कहती हो?"

विनय ने कहा, "भाई सतीश, आज नहीं। मौसी को याद रह जाय तो और किसी दिन आकर प्रसाद पा लूँगा। आज तो देर हो गई है।"

बात कुछ असाधारण तो नहीं थी, किंतु स्वर रुँधे हुए ऑसू से भर्राया हुआ था। उसकी करुणा सतीश की मौसी के कानों में भी पहुँच गई। उन्होंने चकित होकर एक बार विनय की ओर, एक बार ललिता के चेहरे की ओर देखा और समझ लिया कि अनदेखे ही भाग्य का कुछ खेल हो रहा है।

ललिता थोड़ी देर बाद ही कोई बहाना करके उठकर अपने कमरे में चली गई। उसने कितनी बार अपने को इसी तरह रुलाया है।

32.उसी समय विनय आनंदमई के घर की ओर चल दिया। लज्जा और वेदना की एक मिश्रित भावना उसके मन को भारी दु:ख दे रही थी। अब तक क्यों वह माँ के पास नहीं गया- कैसी भूल को उसने! उसने समझा था, ललिता को उसकी विशेष आवश्यकता है। सब आवयकताओं को एक ओर कर वह जो कलकत्ता पहूँचते ही दौड़ा हुआ आनंदमई के पास नहीं गया, इसलिए भगवान ने उसे उचित दंड दिया- अंत में उसे ललिता के मुँह से यह सुनना पड़ा कि 'क्या एक बार गोरा बाबू की माँ के पास नहीं जाएँगे?' पल-भर के लिए भी कभी ऐसा अंधेरा हो सकता है कि गौर बाबू की माँ की बात विनय की अपेक्षा ललिता के लिए अधिक महत्वपूर्ण हो उठे! ललिता तो उन्हें केवल गौर बाबू की माँ के रूप में पहचानती है, लेकिन विनय के लिए तो वह सारे जगत् की सब माताओं की एकमात्र प्रत्यक्ष मूर्ति हैं।

आनंदमई अभी-अभी स्नान करके कमरे में फर्श पर आसन बिछाकर उस पर चुपचाप बैठी थीं, शायद मन-ही-मन जप कर रही थीं। विनय ने जल्दी से उनके पैरो पर गिरते हुए कहा, "माँ"

आनंदमई ने अपने दोनों हाथ उसके झुके हुए सिर पर रखते हुए कहा **"**विनय**!"**

माँ जैसा स्वर और किसका हो सकता है? इस स्वर से ही मानो एक करुणा विनय के सारे शरीर को सहला गई। ऑसुओं को रोकते हुए उसने रुँधे गले से कहा, "माँ, मुझे देर हो गई।"

आनंदमई बोलीं, "मैंने सारी बात सुन ली है, विनय!"

चकित स्वर में विनय ने दुहराया, "सारी बात सुन ली है!"

गोरा ने हवालात से ही माँ के नाम पत्र लिखकर वकील बाबू के हाथ भिजवा दिया था। उसने ठीक ही अनुमान किया था कि उसे अवश्य जेल की सज़ा होगी।

उसने पत्र के अंत में लिखा था-

"कारावास से तुम्हारे गोरा की रत्ती-भर भी हानि नहीं होगी। किंतु तुम्हें ज़रा-सा भी दु:ख नहीं करना होगा- तुम्हारा दु:ख ही मेरी असल सज़ा होगी, और कोई दंड देना मजिस्ट्रेट के वश का नहीं है। माँ, तुम केवल अपने बेटे की बात मत सोचना, और भी अनेक माँओं के बेटे जेलों में बेकसूर पड़े रहते हैं, एक बार उनके बराबर कष्ट के युध्द में खड़े होने की इच्छा थी। इस बार यह इच्छा पूरी हो जाए तो मेरे लिए दु:ख मत करना!

माँ, न मालूम तुम्हें याद है या नहीं, जिस साल दुर्भिक्ष पड़ा था मैं एक बार सड़क के साथ वाले कमरे में मेज़ पर अपना बटुआ छोड़कर पाँच मिनट के लिए दूसरे कमरे में गया था। लौटकर देखा तो बटुआ चोरी हो गया था। बटुए में मेरी स्कालरशिप से जमा किए हुए पिचासी रुपए थे। मन-ही-मन मैंने संकल्प कर रखा था कि कुछ रुपए इकट्ठे हो जाने पर तुम्हारे पैर धोने के जल के लिए एक चाँदी का लोटा बनवाऊँगा। रुपए चोरी चले जाने पर जब मैं चोर के प्रति व्यर्थ के क्रोध से जल रहा था तब हठात् भगवान ने मुझे एक सुबुध्दि दी। मैंन मन-ही-मन कहा, मेरे रुपए जिस किसी ने भी चुराए हैं, इस अकाल के समय में उसी को वे रुपए दान करता हूँ। मेरे ऐसा कहते ही मेरे मन का सारा क्रोध शांत हो गया। वैसे ही आज मैं अपने मन को बता रहा हूँ कि मैं जान-बूझकर ही जेल में जा रहा हूँ। मेरे मन में कोई व्यथा नहीं है, किसी के ऊपर गुस्सा नहीं है। मैं जेल में मेहमानी करने ही जा रहा हूँ। वहाँ आहार-विहार की असुविधा तो होगी- किंतु इस बार घूमते हुए मैंने कई घरों का आतिथ्य पाया है, उन सब जगहों पर अपने अभ्यास या आवश्यकता के अनुसार सुविधा नहीं पाता रहा। जो जान-बूझकर ग्रहण किया गया हो वह कष्ट तो कोई कष्ट नहीं होता न,आज जेल का आश्रय मैं अपनी इच्छा से ही ले रहा हूँ। जितने दिन जेल में रहूँगा, एक दिन भी कोई मुझे ज़बरदस्ती वहाँ नहीं रख रहा है यह तुम निश्चय मानना।

इस पृथ्वी पर हम लोग जब घर बैठे अनायास आहार-विहार कर रहे थे, नित्य के अभ्यास के कारण ही यह सोच भी नहीं पा रहे थे कि खुले आकाश और प्रकाश में

घूमने-फिरने का अधिकार अपने-आप में कितना बड़ा अधिकार है, उसी समय में कितने ही लोग पृथ्वी पर अपने दोष से या बिना दोष के ही ईश्वर के दिए हुए उन अधिकारों से वंचित होकर बंधन और अपमान भोग रहे थे- हमने आज तक उनकी बात नहीं सोची थी, उनके साथ कोई संबंध नहीं रखा था। अब मैं उन्हीं के दाग से उनके जैसा दागी होकर ही बाहर आना चाहता हूँ। पृथ्वी के अधिकतर सफेदपोश भलेमानस,जो भद्र लोग बने बैठे हैं, उन्हीं के गुट में घुसकर अपना सम्मान बनाए रखना मैं नहीं चाहता।

माँ, दुनिया का परिवार पाकर अब मैंने बहुत-कुछ सीखा है। ईश्वर जानते हैं, जिन लोगों ने दुनिया में न्याय करने का जिम्मा लिया है,अधिकतर वही दया के पात्र हैं। जो दंड पाते नहीं किंतु देते हैं, जेल के कैदी उन्हीं के पाप की सज़ा भोगते है। अपराध तो बहुत-से लोग मिलकर करते हैं और प्रायश्चित करते हैं बेचारे ये कैदी। जेल के बाहर जो लोग मौज कर रहें हैं, सम्मान पा रहे हैं, उनके पाप का नाश कब, कहाँ, कैसे होगा,यह तो नहीं जानता। पर मैं उस मौज और सम्मान को धिक्कारकर मनुष्य के कलंक का दाग छाती पर लगवाकर निकलूँगा- माँ, मुझे तुम आशीर्वाद दो, आँसू मत बहाना! भृगु के पदाघात का चिह्न श्रीकृष्ण सदा वक्ष पर धारण किए रहे। दुनिया में अत्याचारी लोग जहाँ जितना अन्याय करते हैं उससे भगवान की छाती का वह चिन्ह और गहरा होता जाता है। वह चिन्ह अगर उनका आभूषण हो सकता है, तो फिर मुझे किस बात की फिक्र है, और तुम्हें किस बात का दु:ख?"

आनंदमई ने यह चिट्ठी पाकर महिम को गोरा के पास भेजने की कोशिश की थी। महिम ने कह दिया कि वे नौकरी करते हैं और साहब किसी तरह छुट्टी नहीं देंगे। यह कहकर वे गोरा की नासमझी और अक्खड़पन के लिए उसे कोसने लगे। बोले, "उसी के कारण किसी दिन मेरी नौकरी भी चली जाएगी।" इस बारे में कृष्णदयाल को कुछ भी कहना आनंदमई ने आवश्यक नहीं समझा। गोरा को लेकर स्वामी से उन्हें बड़ी शिकायत थी। वह जानती थीं कि कृष्णदयाल ने गोरा को कभी अपने हृदय में पुत्र का-सा स्थान नहीं दिया है, बल्कि उनके अंत:करण में गोरा के संबंध में एक विरोध का भाव भी है। गोरा मानो आनंदमई के दांपत्य संबंध को विन्ध्याचल की भाँति विभाजित करता हुआ खड़ा था- उसके एक ओर कृष्णदयाल अपने अत्यंत सतर्क शुध्दाचार को लेकर अकेले थे और दूसरी ओर आनंदमई अपने म्लेच्छ बेटे गोरा के कारण अकेली थीं। पृथ्वी पर जो दो जने गोरा के जीवन का इतिहास जानते थे उनके बीच संपर्क का मार्ग मानो बंद हो गया था।

इन्हीं सब कारणों से गृहस्थी में गोरा के प्रति आनंदमई का स्नेह उनकी एकांत अकेली संपत्ति था। इस परिवार में गोरा के अनाधिकार रहने को वह चारों ओर से हल्का करते रहने की चेष्टा करती थीं। उन्हें बराबर यह चिंता रहती थी कि कहीं कोई उन्हें यह न कहे कि "तुम्हारे गोरा के कारण ऐसा हुआ", "तुम्हारे गोरा के कारण ही यह बात सुननी पड़ी", अथवा"तुम्हारे गोरा ने हमारा यह नुकसान कर दिया।" गोरा की सारी ज़िम्मेदारी उन्हीं की तो है और फिर उनका गोरा भी कुछ कम दुर्दम तो नहीं हैं। वह वहाँ रहता है वहाँ उसके अस्तित्व को छिपा रखना कोई आसान काम नहीं है। इसी अपनी गोद के पगले गोरा को उन्होंने इस विरोधी परिवार के बीच इतने दिनों तक रात-दिन सँभालकर इतना बड़ा किया है-बहुत कुछ सुना है जिसका उन्होंने कभी प्रतिकार नहीं किया, बहुत दु:ख सहा है जिसका वह किसी से साझा नहीं कर सकीं।

चुपचाप आनंदमई खिड़की के पास बैठी रहीं। वहीं बैठे-बैठे उन्होने देखा, कृष्णदयाल प्रात:-स्नान करके ललाट, भुजा और छाती पर गंगा की मट्टी की छाप लगाए मंत्र उच्चारण करते हुए घर के भीतर आए। आनंदमई उनके पास नहीं जा सकीं। निषेध, निषेध, सब ओर निषेध- अंत में लंबी साँस लेकर आनंदमई उठीं और महिम के कमरे में गईं। उस समय महिम फर्श पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे और उनका नौकर उनके स्नान के पूर्व तेल से उनके बदन की मालिश कर रहा था। आनंदमई ने उनसे कहा, "महिम, मेरे साथ किसी को भेज दो तो मैं ही जाकर देख आऊँ कि गोरा का क्या हुआ। वह तो यह सोचकर शांत होकर बैठा है कि वह जेल जाएगा ही, अगर उसे जेल होती ही है तो मैं क्या एक बार पहले जाकर उससे मिल भी नहीं सकूँगी?"

महिम का ऊपरी व्यवहार चाहे जैसा रहा हो, किंतु गोरा के प्रति उन्हें एक तरह का स्नेह भी था। उन्होंने ऊपर से तो गरजकर कह दिया, "जाय अभागा जेल ही जाय- अब तक नहीं गया, यही अचरज है!" लेकिन कहने के बाद ही उन्होंने अपने विश्वासी परान घोषान को बुलाकर उसके हाथ वकील के खर्च के लिए कुछ रुपए देकर तत्काल उसे रवाना कर दिया और मन-ही--मन यह भी निश्चय कर लिया कि ऑफिस में यदि साहब ने छुट्टी दे दी और घर में बहू राजी हुई तो वह स्वयं भी जाएँगे।

यह आनंदमई भी जानती थीं कि गोरा के लिए कुछ प्रयत्न किए बिना महिम कभी नहीं रह सकेंगे। यथा संभव महिम व्यवस्था कर रहे हैं, यह जानकर वह अपने कमरे में लौट आईं। वह अच्छी तरह जानती थी कि जहाँ गोरा है उस अपरिचित जगह इस मुसीबत के समय लोगों के कौतूहल,मजाक और आलोचना का सामना करते हुए उन्हें साथ ले जाने वाला इस परिवार में कोई नहीं है। ऑंखों में नीरव वेदना बसाकर

ओंठ भींचकर वह चुपचाप बैठ गईं। लछमिया धाड़ मार-मारकर जब रोने लगी तब उन्होंने उसे डाँटकर दूसरे कमरे में भेज दिया। सभी उद्वेगों को चुप-चाप झेल जाना ही उनका हमेशा का अभ्यास रहा है। सुख और दु:ख दोनों को ही वह शांत भाव से ग्रहण करती थीं, उनके हृदय की अवस्था केवल अंतर्यामी ही जानते थे।

आनंदमई को विनय क्या कहे, यह सोच नहीं सका। लेकिन आनंदमई किसी से भी किसी तरह की सांत्वना की आशा नहीं रखती थी। उनके जिस दु:ख का कोई उपचार नहीं है उसे लेकर उनके साथ कोई दूसरा चर्चा करने आए इससे उन्हें संकोच होता था। उन्होंने और कोई बात उठने न देकर विनय से कहा, "जान पड़ता है विनय अभी तक तुमने स्नान नहीं किया। जाओ, जल्दी से नहा आओ, बड़ी देर हो गई।"

जब विनय स्नान करके भोजन करने बैठा, तब उसके बराबर में गोरा का स्थान सूना देखकर आनंदमई का हृदय हाहाकार कर उठा। आज गोरा जेल का अन्न खा रहा है, वह अन्न माँ की ममता द्वारा मधुर न होकर निर्मम शासन द्वारा कितना कटु हो गया है, यह सोचकर आनंदमई को कोई बहाना करके वहाँ से उठ ही जाना पड़ा।

33.घर आकर परेशबाबू ललिता को असमय लौटी हुई देखकर ही समझ गए कि उनकी इस उद्दाम लड़की ने कोई असाधारण कार्य कर डाला है। उनकी ऑंखों में जिज्ञासा का भाव देखते ही वह बोल उठी, "बाबा, मैं तो चली आई। किसी प्रकार भी वहाँ नहीं रह सकी?"

परेशबाबू ने पूछा**, "**क्यों**,** क्या हुआ**?"**

ललिता ने कहा**, "**मजिस्ट्रेट ने गौर बाबू को जेल भेज दिया।**"**

गौर बाबू कहाँ से इस बीच आ गए, और क्या-कुछ हुआ, परेशबाबू कुछ भी समझ नहीं सके। ललिता से पूरा विवरण सुनकर वह कुछ देर स्तब्ध बने रहे। फिर सहसा उनका हृदय गोरा की माँ की बात सोचकर व्यथित हो उठा। वह मन-ही-मन सोचने लगे, एक आदमी को जेल भेजने में कितने निरपराध लोगों को कितनी कठोर सज़ा दी जाती है, अगर यह बात दंड देने वाले अपने अंत:करण में अनुभव कर सकते, तो किसी को जेल भेजना ऐसा सहज-सरल काम कभी न होता। एक चोर को जो सज़ा दी जाती, वही सज़ा गोरा को भी देना मजिस्ट्रेट के लिए उतना ही आसान हो गया, ऐसी बर्बरता तभी संभव हो सकती है जब मनुष्य की धर्म-बुध्दि बिल्कुल मर गई हो। दुनिया में जितनी तरह की हिंसा होती है, मनुष्य के प्रति मनुष्य का दुरात्म भाव उनसे भी अधिक भयानक है, उसके पीछे समाज और राजा की शक्ति दलबध्द खड़ी

होकर उसे और भी अधिक प्रचंड बना देती है,गोरा के कारावास की बात सुनकर यह जैसे उनके सामने प्रत्यक्ष हो उठा।

परेशबाबू को चुपचाप सोचते देखकर ललिता ने उत्साह पाकर कहा**, "**अच्छा बाबा**,** यह क्या भयानक अत्याचार नहीं है**?"**

अपने स्वाभाविक शांत स्वर में परेशबाबू ने कहा, "गौर ने कितना क्या किया है यह तो मैं ठीक-ठीक नहीं जानता। लेकिन यह बात अवश्य ही कह सकता हूँ कि अपनी कर्तव्य-भावना की झोंक में गौर अपने कर्तव्य की सीमा का उल्लंघन तो कर सकता है; परंतु अंग्रेजी भाषा में जिसे 'क्राइम'कहते हैं वह गोरा के स्वभाव के बिल्कुल विपरीत है- इसमें मुझे ज़रा भी संदेह नहीं है। लेकिन क्या किया जाय बेटी! इस समय की न्याय-बुध्दि अभी इतना विवेकपूर्ण नहीं हुई है। अभी तक अपराध के लिए जो दंड है वही दंड भूल के लिए भी है। दोनों के लिए एक ही जेल में कोल्हू चलाना पड़ता है। यह कैसे हुआ, इसके लिए किसी एक आदमी को दोष नहीं दिया जा सकता। पूरी मानव-जाति का पाप ही इसके लिए उत्तरदाई है।"

परेशबाबू सहसा यह प्रसंग बंद करते हुए पूछ बैठे**, "**तुम किसके साथ आईं**?"**

सीधी होकर ललिता ने मानो विशेष ज़ोर देते हुए कहा**, "**विनय बाबू के साथ।**"**

ललिता बाहर से भले ही दृढ़ दीख रही हो, भीतर-ही-भीतर वह दुर्बलता का अनुभव कर रही थी। वह विनय बाबू के साथ आई है, यह बात वह सहज भाव से नहीं कह सकी, न जाने कैसी एक लज्जा ने आकर उसे घेर लिया। वह लज्जा उसके चेहरे पर पढ़ी जा सकती है, यह सोचकर वह और संकोच करने लगी।

परेशबाबू अपनी इस मनचली लड़की को अपनी अन्य सब संतानों से कुछ अधिक ही स्नेह करते थे। उसका व्यवहार दूसरों की नज़रो में निंदनीय हो सकता है, यह जानकर ही उसके आचरण में जो एक निर्भीक सत्यनिष्ठा थी उसे वह विशेष महत्व देते रहे थे। वह जानते थे कि ललिता का जो दोष है वही बहुत बड़ा होकर लोगों की नज़रों में खटकेगा, और उसका गुण इतना दुर्लभ होने के बावजूद लोगों से प्रशंसा नहीं पाएगा। उसी गुण को परेशबाबू यत्नपूर्वक सँजोते आए हैं। ललिता की अक्खड़ प्रकृति को कुचलकर उसके साथ ही उसके भीतर की इस महत्ता को कुचल देना उन्होंने नहीं चाहा। उनकी अन्य दोनों लड़कियों को सब लोग देखते ही सुंदर मान लेते हैं- उनका रंग गोरा है, उनके चेहरे का गठन भी निर्दोष है लेकिन ललिता का रंग उनसे साँवला है और उसके चेहरे की कमनीयता के बारे में भी लोगों में मतभेद रहता

है। इसी बात को लेकर अक्सर पति के सामने वरदासुंदरी इस बात की चिंता प्रकट किया करती हैं कि उसके लिए पात्र खोजना कठिन होगा। किंतु परेशबाबू को ललिता के चेहरे में जो सौंदर्य दीखता था वह रंग या गठन का सौंदर्य नहीं था, वह अंतस् का गंभीर सौंदर्य था। उसमें केवल लालित्य नहीं था, स्वतंत्रता का तेज़ और आत्मशक्ति की दृढ़ता भी थी; वह दृढ़ता ही सबको अनाकर्षक लगती थी। वह कुछ विशेष व्यक्तियों के लिए आकर्षक हो सकती थी, किंतु अधिकतर को दूर ठेल देती थी। संसार में ललिता प्रिय नहीं होगी किंतु खरी उतरेगी; यह जानकर परेशबाबू मन-ही-मन एक दर्द देकर ललिता को अपने पास खींच लेते थे- उसे और कोई क्षमा नहीं करता यह समझकर ही वह उस पर करुणा के साथ विचार करते थे।

जब परेशबाबू ने सुना कि ललिता सहसा विनय के साथ अकेली चली आई तब पल-भर में वह समझ गए कि इसके लिए उसे बहुत दिनों तक बहुत दु:ख भोगना पड़ेगा। जितना अपराध उसने किया है उससे कहीं बड़े अपराध के दंड का विधान लोग उसके लिए करेंगे। वह चुपचाप यह बात सोच ही रहे थे कि बीच में ललिता बोल उठी, "बाबा, मुझसे गलती हुई है। लेकिन अब मैं अच्छी तरह यह समझ गई हूँ कि मजिस्ट्रेट के साथ हमारे देश के लोगों का ऐसा संबंध है कि उनके आतिथ्य में सम्मान ज़रा भी नहीं है, कोरा अनुग्रह है। क्या यह सहकर भी मेरा वहाँ रहना ठीक था?'

परेशबाबू को यह प्रश्न कुछ ऐसा आसान नहीं जान पड़ा। उन्होंने कोई उत्तर देने का प्रयत्न न करके दाहिने हाथ से उसके सिर पर हल्की-सी चपत लगाते हुए कहा, "पगली!"

परेशबाबू इसी घटना के बारे में सोचते हुए उसी दिन के तीसरे पहर घर के बाहर टहल रहे थे कि विनय ने आकर उन्हें प्रणाम किया। गोरा की सज़ा के बारे में बहुत देर तक परेशबाबू उसके साथ बातचीत करते रहे, लेकिन ललिता के विनय के साथ स्टीमर में आने की कोई चर्चा उन्होंने नहीं चलाई। साँझ होते देखकर उन्होंने कहा, "चलो विनय, भीतर चलें!"

विनय ने कहा, "नहीं, अब मैं घर जाऊँगा।"

दुबारा परेशबाबू ने अनुरोध नहीं किया। विनय ने एक बार मानो चौंककर दुमंज़िले की ओर नज़र उठाई, और फिर धीरे-धीरे चला गया।

ऊपर से ललिता विनय को देख चुकी थी। जब परेशबाबू अकेले कमरे में आए तो ललिता ने समझा कि विनय भी पीछे-पीछे आता ही होगा। जब वह कुछ देर बाद तक भी नहीं आया तब मेज़ पर से दो-एक किताबें और कागज़ इधर-उधर करके ललिता भी कमरे में चली गई। उसे परेशबाबू ने वापस बुला लिया और उसके उदास चेहरे पर स्नेह-भरी दृष्टि टिकाकर बोले, "ललिता, मुझे कुछ ब्रह्मसंगीत सुनाओ!"

कहते-कहते लैंप को हटाकर ऐसी जगह रख दिया कि उसका प्रकाश ललिता के चेहरे पर न पड़े।

34.अगले रोज़ वरदासुंदरी और उनके साथ के बाकी लोग भी लौट आए। हरानबाबू ललिता पर अपने गुस्से को सँभाल न पाकर अपने घर न जाकर सीधेइन सबके साथ परेशबाबू के सामने आ उपस्थिति हुए। वरदासुंदरी तो क्रोध के कारण ललिता की ओर देखे बिना तथा उससे कोई बात भी किए बिना अपने कमरे में चली गईं। लावण्य और लीला भी ललिता पर बहुत नाराज थीं। ललिता और विनय के चले आने से उनका आवृत्ति और अभिनय का कार्यक्रम ऐसा नीरस हो गया था कि उन्हें बहुत लज्जित होना पड़ा था। सुचरिता हरानबाबू के क्रोध की उत्तेजना, वरदासुंदरी के रुऑंसे आक्षेप अथवा लावण्य और लीला के निरुत्साह, किसी में कोई भाग लिए बिना एकदम तटस्थ थी- अपना निर्दिष्ट काम उसने यंत्रवत् कर दिया था और आज भी यंत्र-चालित-सी सबके पीछे-पीछे घर आ गई थी। सुधीर लज्जा और अनुताप से संकुचित होकर परेशबाबू के घर के दरवाजे से ही लौट गया था- लावण्य ने भीतर आने के लिए उससे बहुत आग्रह किया था और अंत में किसी प्रकार सफल न होने पर उसने कुट्टी कर दी थी।

परेशबाबू के कमरे में घुसते ही हरान बोले, "एक बहुत बुरी बात हो गई है।"

ललिता परेशबाबू के कमरे में ही थी। उसके कान में यह बात पड़ते ही वह पिता की कुर्सी के पीछे दोनों ओर हाथ रखकर खड़ी हो गई और एकटक हरानबाबू के चेहरे की ओर देखने लगी।

परेशबाबू बोले, "मैंने सारी बात ललिता से सुन ली है। जो बात हो चुकी है उसको लेकर अब बहस करने से कोई फायदा नहीं है।"

परेशबाबू के शांत और संयत होने के कारण हरानबाबू उन्हें बहुत दुर्बल समझते थे इसीलिए कुछ अवज्ञा से बोले, "बात तो होकर चुक जाती है,लेकिन आदत तो वही रहती है, इसीलिए जो हो चुका उस पर बहस करना ज़रूरी हो जाता है। जो हरकत

ललिता ने की है वह कभी संभव न होती अगर उसे आपसे बराबर बढ़ावा न मिलता रहता। आप उसका कितना अहित कर रहे हैं, यह पूरी बात सुनकर ही आप अच्छी तरह समझ सकेंगे।"

परेशबाबू ने अपने पीछे कुर्सी के थोड़ा-सा हिलने का अनुभव करके जल्दी से ललिता को अपनी ओर खींच लिया और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कुछ मुस्कराकर हरान से बोले, "पानू बाबू, जब समय आएगा तब आप भी समझ लेंगे कि संतान को पालने-पोसने के लिए स्नेह की भी ज़रूरत होती है।"

एक बाँह उनके गले में डालते हुए ललिता ने झुककर उनके कान में कहा, "बाबा, पानी ठंडा हो रहा है, तुम जाकर नहा लो!"

परेशबाबू ने हरान की ओर इशारा करते हुए कहा, "अभी थोड़ी देर में जाऊँगा- अभी ऐसी देर तो नहीं हुई।"

स्निग्ध स्वर में ललिता ने कहा, "नहीं बाबा, तुम नहा आओ, तब तक पानू बाबू के पास हम लोग तो हैं ही।"

जब परेशबाबू कमरे में चले गए तब एक कुर्सी खींचकर ललिता उस पर जमकर बैठ गई और हरान बाबू के चेहरे पर नजर जमाकर बोली, "आप समझते हैं, सभी को सब-कुछ कहने का अधिकार आपको है।"

सुचरिता ललिता को पहचानती थी। और कोई दिन होता तो ललिता का यह रूप देखकर मन-ही-मन वह उद्विग्न हो उठती। लेकिन आज वह खिड़की के पास एक कुर्सी पर बैठकर किताब खोलकर चुपचाप उसके पन्ने की ओर देखती रही। हमेशा अपने को वश में रखना सुचरिता का स्वभाव भी था और अभ्यास भी। पिछले कुछ दिनों से तरह-तरह के आघातों की पीड़ा उसके मन में जितनी अधिक हृदय के अवरुध्द वेग को भी मानो फूट निकलने का अवसर मिल गया।

ललिता ने कहा, "बाबा का हमारे बारे में क्या कर्तव्य है, आप समझते हैं कि यह बात बाबा से ज्यादा आप जानते हैं! आप ही क्या सारे ब्रह्म-समाज के हेडमास्टर हैं?"

हरानबाबू ललिता का ऐसा उध्दत रूप देखकर पहले तो हतबुध्दि हो गए थे। अब वह ललिता को कोई बहुत कठोर जवाब देना चाह रहे थे, पर ललिता ने उन्हें अवसर न

देते हुए कहा, "इतने दिनों से हम आपका बड़प्पन झेलते आ रहे हैं लेकिन आप अगर बाबा से भी बड़ा होना चाहते हैं तो इस घर में कोई नहीं सहेगा-हमारा बैरा भी नहीं।"

हरानबाबू ने किसी तरह कहा, "ललिता, तुम.... "

उनकी बात काटते हुए ललिता ने और भी तीखे स्वर में कहा, "चुप रहिए! आप की बातें हम लोगों ने बहुत सुनी हैं, आज मेरी बात सुन लीजिए! आपको विश्वास न हो तो सुचि दीदी से पूछ लीजिएगा- जितना बड़ा आप अपने को महसूस करते हैं, मेरे बाबा उससे कहीं अधिक बड़े हैं। अब आपको जो कुछ उपदेश मुझे देना हो दे डालिए!"

हरानबाबू का चेहरा स्याह पड़ गया था। वह कुर्सी ठेलकर उठते हुए बोले, "सुचरिता!"

सुचरिता ने किताब की ओर से चेहरा उठाया। हरानबाबू बोले, "तुम्हारे सामने ललिता मेरा अपमान करेगी?"

धीमे स्वर में सुचरिता ने कहा, "वह आपका अपमान करना नहीं चाहती-ललिता यही कहना चाहती है कि आप पिताजी का सम्मान किया करें। उनके बराबर सम्मान के योग्य किसी दूसरे को हम तो नहीं जानतीं।"

एक बार तो ऐसा लगा था कि हरानबाबू उसी समय चले जाएँगे। लेकिन वह गए नहीं। अत्यंत गंभीर चेहरा करके फिर बैठ गए। धीरे-धीरे इस घर में उनका आदर घटता जा रहा है, जितना ही वह इसका अनुभव करते थे, उतना ही यहाँ अपना स्थान बनाए रखने की अधिक कोशिश करते थे। यह वह भूल जाते थे कि जो सहारा कमज़ोर हो उसे ज़ोर से जकड़ना चाहने से वह और भी टूट जाता है।

यों हरान बाबू गंभीर होकर चुप हैं, ललिता यह देखकर उठकर सुचरिता के पास जा बैठी और उसके साथ ऐसे मृदु स्वर में बातें करने लगी मानो कुछ बात ही न हो।

सतीश ने इसी बीच कमरे में आकर सुचरिता का हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा, "बड़ी दीदी, चलो!"

सुचरिता ने पूछा, "कहाँ जाना है?"

सतीश बोला, "चलो तो, एक खास चीज़ तुम्हें दिखानी है। ललिता दीदी, तुमने बता तो नहीं दिया?"

ललिता ने कहा, "नहीं।"

सतीश का ललिता के साथ समझौता हुआ था कि उसकी मौसी की बात ललिता सुचरिता के सामने प्रकट नहीं करेगी। ललिता ने अपना वायदा नहीं तोड़ा था।

अतिथि को छोड़कर सुचरिता नहीं जा सकती थी। बोली, "वक्त्यार, अभी थोड़ी देर में चलूँगी- बाबा ज़रा नहाकर आ जाएँ।"

सतीश उतावला हो उठा। किसी तरह हरानबाबू की ऑंखों से अपने को ओझल करने के यत्न में कभी उससे चूक नहीं होती थी। हरानबाबू से वह बहुत डरता था इसलिए और कुछ नहीं कह सका। हरानबाबू भी बीच-बीच में सतीश को सुधारने की चेष्टा करने के अलावा और उससे किसी तरह का संपर्क नहीं रखते थे।

परेशबाबू के स्नान करके आते ही सतीश अपनी दोनों बहनों को खींच ले गया।

हरान बोले, "वह जो सुचरिता के बारे में प्रस्ताव था, उसमें और देर करना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ वह काम अगले रविवार को ही हो जाए।"

परेशबाबू बोले, "इसमें मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है, सुचरिता की राय है तो ठीक है।"

"उनकी तो राय पहले ही ली जा चुकी है।"

"अच्छी बात है, तो फिर यही सही।"

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय